THE HINDU

Date: 20-12-25

Do not rush it

The SIR requires more time to prevent mass exclusions

Editorial

The Election Commission of India (ECI) has released the draft electoral roll for seven States and Union Territories after the first phase of the Special Intensive Revision (SIR) was completed with the submission of enumeration forms by eligible voters and their digitisation by Booth Level Officers (BLO). In Tamil Nadu and West Bengal, more than 97 lakh and 58 lakh voters, respectively, were deleted. These deletions range from 7.5% of the pre-SIR rolls in West Bengal to 15% in the case of Tamil Nadu. In West Bengal, the deletions seem to be the highest in urban areas, especially Kolkata. A clear picture on the gender breakup and the reasons for the deletions will emerge only after parsing the ECI's booth-wise data. Reports also indicate that the ECI has identified a high number of enumeration forms in West Bengal as either unmapped to the 2002 electoral roll or carrying doubtful linkages. The risk of widespread exclusions looms within a compressed 53-day hearing window with Electoral Registration Officers expected to insist on citizenship documentation, including proof of parents' birth details for those born after 1987. In Bihar, the Supreme Court of India's salve — allowing electors to use Aadhaar as a viable identity document — helped stave off a high number of deletions, but even then, 68 lakh names were deleted and 24 lakh added as fresh voters or through change/correction requests. The resultant drop in the female gender ratio, from 907 in the pre-SIR rolls to 892 in the final rolls, suggested that all was not well with the SIR in that State.

Seen in this light, the Court's direction to the ECI to take a "sympathetic view" of representations to extend the enumeration phase by considering the "ground realities" is something that the electoral body should heed. While the ECI has proclaimed that it will ensure no genuine voter is disenfranchised, it relies on tabulating change/correction requests from Booth Level Agents of political parties rather than cross-mapping with government databases such as death registration data. Vulnerable sections such as short-term migrants, illiterate voters and married women risk disenfranchisement under this process, suggesting that the procedure of placing the onus on eligible voters to confirm their presence on the rolls is flawed. Add to this the logistical difficulties faced by States such as Kerala where the SIR coincided with local body elections, combined with the pressure on BLOs to meet tight deadlines, and the case for extending the timeline becomes compelling. Lastly, while the Court has helped ease voter registration during the SIR, it has still not heard the key question of the constitutionality of the whole process. The sooner it decides on it, the easier it would be for electors and the ECI.

दैनिक भास्कर

Date: 20-12-25

साफ हवा कोई लग्जरी नहीं, नागरिकों का अधिकार है

पवन के. वर्मा, (पूर्व राज्यसभा सांसद व राजनयिक)

जिस तरह से हर साल दिल्ली, एनसीआर और उत्तर भारत का बड़ा हिस्सा प्रदूषण की आपदा से जूझता है, उसे देखकर आप पूछ सकते हैं कि भला सरकारें कब तक इसे नजरअंदाज कर सकती हैं? और एक-एक सांस के लिए जूझ रहे नागरिक भला कब तक इस घुटन को चुपचाप स्वीकार करते रहेंगे?

जब एक्यूआई नियमित रूप से 450 से ऊपर की 'गंभीर' और 'अत्यंत खतरनाक' श्रेणियों को पार करता है तो यह स्तर किसी भी सभ्य समाज में सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल घोषित करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार इसमें मनुष्य की औसत आयु 8.2 वर्ष तक घट जाती है। साथ ही हृदयाघात, स्ट्रोक, सांस सम्बंधी रोगों और अन्य दीर्घकालिक बीमारियों का खतरा भी तेजी से बढ़ता है। बच्चों के फेफड़े सर्वाधिक संवेदनशील होते हैं, जबकि बुजुर्ग और पहले से बीमार लोगों पर इसका बहुत बुरा असर होता है। यह मौसमी असुविधा नहीं, हर साल करोड़ों नागरिकों पर ढाया जाने वाला अत्याचार है।

जब यह स्थिति हर साल निर्मित होती है तो इसका समाधान क्यों नहीं हो पा रहा है? क्या इस संकट का कोई समाधान नहीं? दुनिया के दूसरे देशों ने तो बताया है कि ऐसा नहीं है। कुछ साल पहले बीजिंग की हवा भी दिल्ली जितनी दमघोंटू हो गई थी। 2013 में चीनी सरकार ने 'प्रदूषण के खिलाफ युद्ध' का ऐलान किया। उत्सर्जन में कड़ी कटौती की गई, उद्योगों और वाहनों के लिए सख्त मानक तय किए और क्लीन एनर्जी की ओर तेजी से रुख मोड़ा गया। निरंतर और कठोर क्रियान्वयन का नतीजा यह हुआ कि बीजिंग सहित कई प्रमुख शहरों की वायु गुणवत्ता में ठोस सुधार देखने को मिला।

हम हर साल तब ही क्यों जागते हैं जब आपदा हमारे सिर पर आ खड़ी होती है, जबकि हमें पहले से पता होता है कि अगर स्थायी और कठोर कदम नहीं उठाए गए, तो अगला साल भी ठीक वैसा ही होगा? निर्माण गतिविधियों पर अस्थायी रोक, आपातकालीन ग्रेडेड रिस्पॉन्स एक्शन प्लान के चरणों को लागू करना, पुराने डीजल वाहनों पर प्रतिबंध, स्कूलों को बंद करना, घरों में रहने की सलाह- ये सब केवल प्रतिक्रियात्मक, प्रतीकात्मक, अल्पकालिक उपाय हैं- समाधान नहीं।

राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी स्पष्ट दिखती है। अभी-अभी समाप्त हुए संसद सत्र में वायु प्रदूषण संकट पर चर्चा के लिए समय तक नहीं निकाला गया, जबकि यह मुद्दा सूचीबद्ध था। इस स्तर की सरकारी उदासीनता आपराधिक कही जानी

चाहिए और संविधान का सीधा उल्लंघन भी, क्योंकि सांस लेने के अधिकार को कुचलकर हम जीवन के अधिकार- जो एक मौलिक अधिकार है- को ही खतरे में डाल रहे हैं।

प्रदूषण न तो नगर निगम की सीमाओं को मानता है और न ही राज्यों की। फिर भी दिल्ली, हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश की सरकारों को साथ लेकर अब तक कोई संयुक्त समिति तक नहीं बनाई गई। न ही किसानों को पराली जलाने के व्यवहार्य आर्थिक विकल्प दिए गए- चाहे वह मशीनरी पर सब्सिडी हो, बायोफ्यूल के लिए प्रोत्साहन हो, फसलों में विविधता या कटाई के बाद बची चीजों पर वैल्यू-एडिशन हो। स्वच्छ सार्वजनिक परिवहन के विस्तार पर भी बड़ा निवेश नहीं हुआ, प्रदूषण फैलाने वाली औद्योगिक इकाइयों को न तो हटाया गया और न ही बंद किया गया, और निर्माण स्थलों पर धूल नियंत्रण तथा वाहनों के उत्सर्जन मानकों का सख्ती से पालन भी नहीं कराया जा सका है।

सबसे ज्यादा हैरानी इस बात की है कि नागरिकों ने अभी तक इसके विरुद्ध कोई संगठित और प्रभावी आंदोलन क्यों नहीं किया, जो व्यवस्था को बदलाव लाने के लिए मजबूर कर सके? हम इतनी आसानी से हर चीज के अभ्यस्त क्यों हो जाते हैं? राष्ट्रगीत वंदे मातरम् के प्रति देश के मन में गहरे आदर की भावना है, लेकिन यह पूछना जरूरी है कि जब संसद के बाहर लोगों का दम घुट रहा था, तब राष्ट्रगीत के ऐतिहासिक संदर्भों पर पूरे दिन की बहस क्या सचमुच हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए थी? क्या संसद में बैठे लोग यह समझते हैं कि प्रदूषण भले साझा समस्या हो, उसका बोझ सब पर समान रूप से नहीं पड़ता है?

जिनके पास संसाधन हैं, वो तो एयर प्यूरीफायर के पीछे शरण ले लेते हैं; लेकिन क्या साधनहीन लोग जहरीली हवा में सांस लेने को मजबूर रहेंगे? देश की बड़ी आबादी के पास रोजी-रोटी कमाने के लिए घर से निकलने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। क्या साधन-सम्पन्न वर्ग कभी उनके बारे में सोचता है? और क्या सरकार इस बात से अनभिज्ञ है कि राष्ट्रीय राजधानी में प्रदूषण की यह हालत हमारी अंतरराष्ट्रीय छवि पर बट्टा लगाती है, जबकि हम तीसरी सबसे बड़ी इकोनॉमी होने का दावा करते हैं?

Date: 20-12-25

एआई पर टैक्स लगाने के बारे में सोचना शुरू कर देना चाहिए

केविन ओ नील, (रॉकफेयर फाउंडेशन में मैनेजिंग डायरेक्टर)

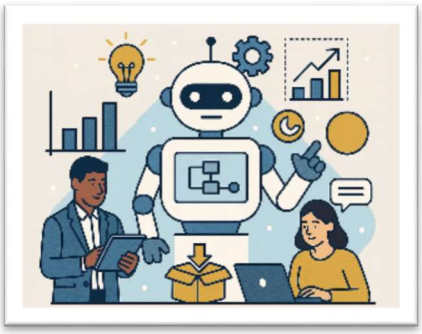

शायद ही कोई दिन जाता हो, जब ऐसी खबरें ना आती हों कि एआई कैसे अर्थव्यवस्था को बदलने वाला है। भले ही इस बारे में बहुत सारे दावे बढ़ा-चढ़ाकर किए जाते हों, लेकिन हमें बदलावों के लिए तैयार तो रहना ही होगा। एआई समाज के लिए फायदेमंद हो, यह सुनिश्चित करने का सबसे भरोसेमंद तरीका है- टैक्स!

तो वास्तव में एआई टैक्स कैसा होगा? इसका सबसे व्यावहारिक तरीका यह है कि एआई डेवलपमेंट के प्रमुख इनपुट्स यानी एनर्जी, चिप्स या कम्प्यूट-टाइम को टैक्स के लिए लक्षित किया जाए। अमेरिका ने कुछ खास एआई चिप्स की चीन को बिक्री पर 15% शुल्क लगाया है। इससे पता चलता है कि एआई इनपुट टैक्स कैसे कारगर हो सकता है। कुछ लोगों ने सुझाया है कि हमें एआई से हो रहे बदलावों के मद्देनजर पूंजी पर टैक्स लगाने का तरीका भी बदलना चाहिए।

एआई-टैक्स का कोई भी ढांचा इस पर निर्भर करेगा कि सरकारें इससे क्या हासिल करना चाहती हैं। कोई यह भी पूछ सकता है कि हमें एआई पर टैक्स लगाना ही क्यों चाहिए? इस सवाल का जवाब हमारी टैक्स प्रणालियों और एआई कैसे अर्थव्यवस्था को बदल रहा है- इस बारे में दो बुनियादी बातें बताता है। पहली, कई देश फिलहाल श्रम बाजार में मानव श्रमिकों पर उनके संभावित एआई प्रतिस्पर्धियों की तुलना में ज्यादा टैक्स लगाते हैं। अमेरिका में लगभग 85% केंद्रीय राजस्व लोगों और उनके काम पर लगाए टैक्स से आता है। जबकि पूंजी और कॉर्पोरेट मुनाफों से काफी कम टैक्स वसूली होती है। एआई जैसी तकनीकों को रियायतों और कॉर्पोरेट टैक्स की किफायती दरों जैसी राहत मिलती है।

दूसरी बात, अर्थशास्त्रियों को उम्मीद है कि एआई श्रम की तुलना में अधिक वित्तीय लाभ देगा। इसका सबसे चरम रूप वो एआई एजेंट होंगे, जो खुद डिजाइन, रेप्लिकेट और सेल्फ-मैनेजिंग में सक्षम होंगे। यानी पूंजी खुद ही श्रम की भूमिका निभाएगी। वर्तमान कर-नीतियों के तहत ऐसा बदलाव विषमता बढ़ाएगा और जीडीपी के अनुपात में सरकारी राजस्व कम करेगा।

एआई टैक्स इंसानों और मशीनों, दोनों के लिए समान अवसरों वाला मैदान तैयार कर सकता है। इस साल की शुरुआत में एंथ्रोपिक के सीईओ डारियो अमोदेई ने चेतावनी दी थी कि एआई अगले पांच वर्षों में एंट्री लेवल की आधी व्हाइट कॉलर नौकरियों को समाप्त कर सकता है। इससे पांच वर्षों में बेरोजगारी 10-20% तक पहुंच सकती है। श्रम पर पूंजी से अधिक टैक्स लगाना ऑटोमेशन को बढ़ावा देता है, जिससे मानव श्रमिकों की सहायता तो कतई नहीं होती, बल्कि मशीनें उनकी जगह ले लेती हैं। कम से कम हम अपनी टैक्स प्रणाली को तो ऐसा नहीं करने दें।

एक बड़ी बात यह भी है कि यदि बड़ी संख्या में नौकरियां खत्म होती हैं या नई भर्तियां धीमी होती हैं तो अभी आय और पे-रोल करों पर निर्भर सरकारों के सामने गंभीर वित्तीय संकट पैदा हो सकता है। भले ही बाद में एआई संबंधी नए रोजगार पैदा हो जाएं।

सही कर-नीतियां एआई से उत्पादकता में आए उछाल के साथ मिलकर वित्तीय समस्याओं का हल कर सकती हैं। अमीर देश बुजुर्ग आबादी के लिए स्वास्थ्य सेवा और पेंशन का पैसा जुटाने की समस्या से जूझ रहे हैं। जबकि गरीब देशों के सामने कर-संबंधी आय कम होने के बावजूद बड़ी युवा आबादी को शिक्षित करने और रोजगार देने की चुनौतियां हैं। ऐसे में एआई से प्राप्त होने वाला टैक्स-राजस्व इन दोनों की समस्याओं का समाधान बन सकता है।

इसके अलावा इस राजस्व को वापस एआई-संबंधी कार्यों में भी खर्च किया जा सकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उद्देश्य जनता के लिए उस तकनीक के लाभों को बढ़ाना है, जिस पर कर वसूला गया है। एआई टैक्स से बेरोजगारी बीमा बढ़ाया जा सकता और हटाए गए मजदूरों की री-ट्रेनिंग हो सकती है। या इससे एआई नीति का दायरा व्यापक किया जा सकता है।

अभी तो नीति-निर्माता इनोवेशन को रोकना या एआई में पिछड़ना नहीं चाहेंगे। लेकिन जैसे ही जनता में जागरूकता आई, ये अरुचि समाप्त हो जाएगी। यदि एआई में जीत के मायने महज बड़े मॉडल और अमीर कंपनियां नहीं, बल्कि सेहतमंद लोग, प्रसन्न बच्चे और अधिक कुशल कार्यबल भी है, तो एआई टैक्स से यह सम्भव हो सकता है।

दैनिक जागरण

Date: 20-12-25

भारतीय धरोहर की वैश्विक स्वीकार्यता

शिशिर शुक्ला, (लेखक अस्टिटेंट प्रोफेसर हैं)

अंधकार पर प्रकाश की विजय के पर्व दीपावली को संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) की सांस्कृतिक विरासत सूची में शामिल किया गया है। भारत के लिए यह एक उपलब्धि है। अभी तक यूनेस्को की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत सूची में भारत की 15 धरोहरें शामिल थीं। इनमें कुंभ मेला, गुजरात का गरबा नृत्य, कोलकाता की दुर्गा पूजा, योग, वेद पाठ, रामलीला, छाऊ नृत्य, नवरोज त्योहार, कालबेलिया नृत्य प्रमुख हैं। दीपावली को 16वीं अमूर्त विरासत के रूप में यूनेस्को की सूची में जोड़ा गया है। भारत की सांस्कृतिक परंपराएं महज अतीत का एक प्रमाण मात्र ही नहीं हैं, अपितु वे पूर्णतया जीवंत हैं और प्रत्येक भारतीय के जीवन के सूक्ष्म अनुभवों में धड़कती हैं।

भारत अपने त्योहारों, रीति-रिवाजों, लोककथाओं, संगीत, नृत्य, खान-पान और सामाजिक व्यवहारों के माध्यम से केवल अपना अतीत ही नहीं संभालता, बल्कि अपने आत्मा को भी जीवंत रखता है। जब कोई सांस्कृतिक परंपरा वैश्विक पटल पर प्रतिष्ठित होती है, तो उसके अर्थ एवं भाव स्थानीयता से उठकर सार्वभौमिकता की ओर बढ़ जाते हैं। यूनेस्को ने दीपावली को न केवल एक त्योहार के रूप में देखा, बल्कि एक सांस्कृतिक दर्शन के रूप में पहचाना, जो अनंत काल से हमारे समाज का अभिन्न अंग बना हुआ है। भारत का सांस्कृतिक तंत्र जितना विशाल है, उतना ही जटिल भी है। यहां पग-पग पर भाषा, भोजन की शैली, पहनावा, लोकगीतों का सुर, त्योहारों की परंपरा, आचार-विचार आदि भिन्न रूप ग्रहण करते हुए सामने आते हैं, किंतु इन तमाम विविधताओं को एक सूत्र में बांधने का कार्य उसी विविधता में विद्यमान एकता के द्वारा किया जाता है। दीपावली का त्योहार इस एकतासूत्र का सर्वोत्तम उदाहरण है। देश के विभिन्न हिस्सों में हर जगह दीपों की संख्या भले ही अलग हो, किंतु प्रकाश का अर्थ, स्वरूप एवं उसमें निहित संदेश एक ही रहता है। इस व्यापकता और बहुस्तरीयता को समझना अपने आप में भारत की सांस्कृतिक शक्ति को समझना है। दीपावली का यूनेस्को सूची में शामिल होना एक सांस्कृतिक उपलब्धि भर नहीं है, बल्कि भारत के लिए व्यापक अवसर है-सांस्कृतिक संवाद को विस्तार देने का, वैश्विक प्रभाव बढ़ाने का और आने वाली पीढ़ियों में सांस्कृतिक आत्मविश्वास जगाने का। हम इस अवसर का उपयोग सांस्कृतिक संवर्धन, आर्थिक सशक्तीकरण और सामाजिक सामंजस्य के रूप में कर सकें तो बेहतर, क्योंकि भविष्य में दीपावली के अवसर पर विदेशी पर्यटक भी भारत की ओर भ्रमण हेतु उन्मुख होंगे। इससे हमारे सांस्कृतिक एवं परंपरागत उद्योग तथा कौशल विश्व स्तर पर अपनी पहचान बनाने में सक्षम हो सकेंगे।

विश्व का कोई भी देश हो, वहां पर भारतीयता किसी न किसी रूप में अवश्य मौजूद है। दुनिया भर के भारतवंशी दीपावली को उसी स्तर की वैश्विक स्वीकार्यता दिला सकते हैं, जैसी क्रिसमस अथवा न्यू ईयर को मिली हुई है। विभिन्न देशों में रह रहे भारतीय मूल के लोगों को दीपावली संस्कृति को विश्व पटल पर स्थापित करने में योगदान देना चाहिए। भारतीय दूतावासों-उच्चायोगों को भी इस दिशा में पहल करनी होगी। वैश्विक स्वीकार्यता का अर्थ केवल अंतरराष्ट्रीय सम्मान अर्जित कर लेना ही नहीं है। इस स्वीकार्यता के साथ जिम्मेदारियां भी समानुपात में बढ़ती हैं। वैश्वीकरण के दौर में काफी कुछ बाजार की चमक में अपना मूल रूप खो देता है, लिहाजा दीपावली के मूल तत्वों को सुरक्षित रखना आज और भी आवश्यक एवं चुनौतीपूर्ण हो गया है। यह त्योहार मानव सभ्यता की गहरी सांस्कृतिक परतों में अध्ययन का विषय बनना चाहिए। आज पश्चिमी जगत में बहुत सी सांस्कृतिक परंपराएं महज उत्सवों की औपचारिकताओं में सिमट गई हैं। इसके विपरीत भारत में लोक संस्कृति आज भी जीवित है। यह जीवंतता ही भारत को सांस्कृतिक रूप से अनूठा बनाती है। विश्व राजनीति में संप्रभुता वह शक्ति है जो सांस्कृतिक आकर्षण और नैतिक प्रभाव के माध्यम से देशों को जोड़ती है। योग, आयुर्वेद, भारतीय भोजन, भारतीय सिनेमा, भारतीय संगीत और अब दीपावली, ये सब भारत की संप्रभुता के स्तंभ बन चुके हैं। जब कोई राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक विरासत के माध्यम से विश्व पटल पर पहचान बनाता है, तो उसकी वैश्विक छवि अधिक सकारात्मक बनती है और उसकी अंतरराष्ट्रीय भूमिका भी अधिक प्रभावी हो जाती है। पर्यटन, सांस्कृतिक उद्योग, हस्तशिल्प, पारंपरिक कला, लोकनृत्य, पारंपरिक खानपान, इन सभी क्षेत्रों को वैश्विक मंच मिलता है।

आज जब सभ्यताएं संघर्षों से गुजर रही हैं, तब एक ऐसा सांस्कृतिक संदेश जो प्रकाश, उत्साह, एकता और शुभता की बात करता है, वह मानवता के लिए एक दिशासूचक बन सकता है। यूनेस्को का यह निर्णय भारत को एक नवीन जिम्मेदारी सौंपता है और वह है अपनी संस्कृति का संरक्षण, संवर्धन और पुनर्जागरण। आधुनिक पीढ़ी को अपनी जड़ों से जोड़ना, त्योहारों को उनके वास्तविक अर्थ के साथ जीना और विदेशी प्रभावों एवं बाजारीकरण के बीच अपने सांस्कृतिक आत्मा को सुरक्षित रखना, ये उद्देश्य प्राप्त करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। दीपावली की वैश्विक मान्यता हमें स्मरण कराती है कि हमारी सांस्कृतिक परंपराएं केवल धार्मिक या सामाजिक व्यवहार नहीं हैं, बल्कि वे हमारे जीवन के अर्थ को समृद्ध करने में भी महती भूमिका का निर्वहन करती हैं।

जनसत्ता

Date: 20-12-25

आबादी के बदलते आयाम और चुनौतियां

अखिलेश श्रीवास्तव चमन

किसी भी देश या समाज की असली ताकत उसके युवा होते हैं। भारत इस समय दुनिया की सबसे बड़ी युवा आबादी वाला देश है। संयुक्त राष्ट्र की घोषणा के अनुसार भारत की पचास फीसद से अधिक आबादी पच्चीस साल से कम उम्र के युवाओं की है और पैंतीस साल से कम उम्र के युवा भारत में पैंसठ फीसद हैं। देश के लिए यह प्रसन्नता की बात है। मगर सामाजिक स्थितियां इशारा कर रही हैं कि इस खुशी की आयु बहुत लंबी नहीं है। देश वृद्ध आबादी के झुकते संतुलन की

तरफ बहुत तेजी के साथ बढ़ रहा है। इस बात की पुष्टि विविध आंकड़ों से भी होती है। अनुमान है कि वर्ष 2046-47 तक भारत बुजुर्गों का देश हो जाएगा। यानी यहां युवाओं की तुलना में वृद्धों की संख्या अधिक हो जाएगी।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार, वर्ष 2011 में भारत में साठ वर्ष से अधिक आयु के लोगों की आबादी 10.16 करोड़, यानी देश की कुल आबादी की लगभग 8.4 फीसद थी। अनुमान के मुताबकि, अगले दस वर्षों में यह आबादी बढ़ कर दोगुनी और कुल आबादी की 10.5 फीसद हो गई। बताया जाता है कि वर्तमान में देश में साठ वर्ष से अधिक आयु वालों की जनसंख्या कुल आबादी की लगभग बारह फीसद से कुछ है। वर्ष 2036 में देश की कुल आबादी 153 करोड़ हो सकती है और तब तक बुजुर्गों की आबादी लगभग 23 करोड़ यानी पंद्रह फीसद हो जाएगी। यानी वर्ष 2036 में देश का हर सातवां व्यक्ति साठ साल से अधिक आयु का होगा। इसी प्रकार, अनुमान है कि वर्ष 2050 में देश की लगभग 21 फीसद आबादी वरिष्ठ नागरिकों की होगी। वर्ष 2075 में भारत की कुल आबादी 1.6 अरब होने का अनुमान है, जिसमें लगभग 32 फीसद हिस्सेदारी साठ साल से अधिक आयु वर्ग के लोगों की होगी। यानी 2075 में देश का हर तीसरा व्यक्ति वरिष्ठ होगा।

वर्तमान में भारत की आबादी की औसत आयु उनतीस वर्ष बताई जाती है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, वर्ष 2021 में देश में पंद्रह से उनतीस वर्ष आयु के मध्य के युवाओं की कुल संख्या 37.14 करोड़ थी, जो कुल जनसंख्या की लगभग 28 फीसद है। इसके अलावा, पैंतीस साल से कम उम्र के युवाओं की भागीदारी 65 फीसद से भी अधिक थी, लेकिन अब इसमें गिरावट आने लगी है। अनुमान है कि वर्ष 2036 में देश की आबादी में युवाओं की भागीदारी घट कर लगभग 22.7 फीसद रह जाएगी। इस तस्वीर का साफ संकेत है कि युवा आबादी घटने से देश के जन-बल और कार्यबल में कमी आएगी।

दरअसल, पिछले दो दशकों से देश में बच्चों की आबादी भी तेजी से घट रही है। जबकि दूसरी तरफ चिकित्सा सुविधा तथा जीवन स्तर में सुधार के कारण आम आदमी की जीवन प्रत्याशा (औसत आयु) लगातार बढ़ रही है। आम आदमी की औसत आयु में वृद्धि तक तो बात ठीक है, लेकिन नवजातों की जन्म दर में कमी चिंता का विषय है। यह प्रवृत्ति इस कारण भी चिंता का विषय है कि बच्चों की जन्म दर में गिरावट आकस्मिक नहीं, बल्कि ऐच्छिक और सुविचारित भी है। इस समस्या का एक बड़ा कारण है शादियों में विलंब तथा युवा पीढ़ी का अपने दायित्वों से पलायन । अब से लगभग चार दशक पहले शादियां औसतन पच्चीस - छब्बीस वर्ष की आयु तक हो जाया करती थीं। मगर करिअर का दबाव, जीवनशैली में बदलाव तथा सुरक्षित भविष्य की अनिश्चितता के कारण आज तीस-बत्तीस की उम्र शादी की सामान्य उम्र बन चुकी है। अधिकांश मामलों में तो यह उम्र पैंतीस या उससे भी ऊपर पहुंच चुकी है। वैवाहिक विज्ञापनों में नब्बे फीसद से अधिक युवा तीस वर्ष से अधिक आयु के होते हैं।

चिकित्सा विज्ञान के अनुसार, महिलाओं की प्रजनन क्षमता बीस से सत्ताईस वर्ष की आयु के दौरान चरम पर होती है। तीस वर्ष की उम्र के बाद प्राकृतिक रूप से आने वाले बदलाव की वजह से इसमें कमी आने लगती है। इसी प्रकार, पुरुषों में भी उम्र के मुताबिक कई तरह के कुदरती बदलाव आते हैं। यही कारण है कि समाज में निस्संतान दंपतियों की संख्या बढ़ रही है, जिससे अंततः युवा आबादी कम हो रही है। एक और विसंगति यह है कि आज की युवा पीढ़ी विवाह को लेकर अरुचि दिखाने लगी है। कुछ युवा इस मामले में भय और विरक्ति का शिकार भी हो रहे हैं। सहजीवन के चलन से इस प्रवृत्ति को और अधिक बढ़ावा मिल रहा है। न सिर्फ इतना, बल्कि विवाहित जोड़ों में भी एक बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो विवाह के बावजूद बच्चे पैदा करने तथा उसका पालन-पोषण करने की जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं हैं। विशेष रूप से जहां पति

और पत्नी दोनों नौकरी में हैं, वहां बच्चा पैदा करना एक अवांछित बोझ माना जाने लगा है। हालांकि इसमें घरेलू कार्य का बंटवारा एक बड़ा कारक है। संयुक्त परिवारों के विघटन ने इस सोच को और अधिक बल दिया है।

एक विरोधाभास यह है कि जहां देश में औसत मृत्यु दर में कमी आई है, वहीं दूसरी तरफ युवाओं की मृत्यु दर में वृद्धि हुई है। अध्ययन बताते हैं कि आत्महत्या तथा दुर्घटना युवाओं की मृत्यु के प्रमुख कारण बन रहे हैं। आंकड़ों के अनुसार युवाओं की मौत की बड़ी वजह (17.3 फीसद से भी अधिक) आत्महत्या है। पारिवारिक जिम्मेदारी, मानसिक तनाव, असुरक्षित भविष्य, नशे की लत तथा नौकरी और पढ़ाई का दबाव आदि वे कारण हैं जो युवाओं को संकट की तरफ धकेल रहे हैं।

युवाओं की आबादी के इस रुख के पीछे एक बड़ा कारण सरकार की परिवार नियोजन की नीति भी है। पंद्रह फरवरी 2000 को घोषित भारत की जनसंख्या नीति का उद्देश्य वर्ष 2045 तक देश की जनसंख्या दर को स्थिर करना है। हालांकि अपने देश में परिवार नियोजन को लेकर सख्ती नहीं है। फिर भी विविध माध्यमों से इसे प्रोत्साहन अवश्य दिया जा रहा है। पड़ोसी देश चीन इस तरह की सख्ती का दुष्परिणाम भुगत चुका है। चीन में वर्ष 1979 से 2015 तक एक बच्चा नीति बहुत सख्ती के साथ लागू की गई। इस का नतीजा यह निकला कि चीन में न सिर्फ वृद्धों की संख्या बढ़ गई, बल्कि समाज में स्त्री-पुरुष का अनुपात भी गड़बड़ा गया। कारण कि एक ही बच्चा पैदा करने की अनिवार्यता की स्थिति में अधिकांश दंपति बेटे को वरीयता देने लगे थे। हार कर चीन सरकार ने 2016 में दो बच्चे पैदा करने की छूट दी। उससे भी बात बनती नहीं दिखी तो मई 2021 में तीन बच्चों तक की अनुमति दी गई। अंततः 26 जुलाई 2021 से चीन सरकार ने परिवार नियोजन संबंधी सारे प्रतिबंध हटा लिए । अब चीनी दंपति जितना चाहें, उतने बच्चे पैदा कर सकते हैं।

हमें चीन की इस असहज स्थिति से सबक लेना चाहिए। देश की घटती युवा शक्ति भविष्य के लिए खतरे की घंटी है। लिहाजा अपने देश में युवाओं की घटती संख्या को अब गंभीरता से लिया जाए और भविष्य में भारत को बुजुर्गों का देश होने से बचा लिया जाए।